International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

शंकर अद्वैत वेदान्त दर्शन में विवर्तवाद एवं परिणामवाद

डॉ सुरेंद्र कुमार तोसावड़ा

शोधकर्ता
संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

शोधसार

भारतीय दर्शनों में कार्य कारणवाद का बहुत अधिक महत्व है अद्वैत वेदान्त के अनुसार विवर्तवाद के अनुसार सृष्टि की रचना हुई है | सांख्य एवं योग के अनुसार परिणामवाद अर्थात् प्रकृति के परिणाम एवं विकार से सृष्टि की रचना मानी गई है | अद्वैत वेदान्त में इस परिणामवाद का खण्डन किया जाता है | शंकर ने शोध स्वरुप यह माना है कि परिमाणवाद को परमाणुओं से सिद्ध नहीं किया जा सकता है |

भूमिका -

(1)शंकर अद्वैत वेदान्त दर्शन के अनुसार भारतीय दर्शनों के कारण वाद का अधिक महत्व है | भारतीय दर्शन शास्त्रों में सृष्टि रचना अद्वैत वेदान्त के अनुसार हुई है | संख्या गणित एवं योग के अनुसार प्रकृति से परिणाम तथा विकार में सृष्टि की रचना की मान्यता है | परमाणुओं से परिणामवाद को सिद्ध नहीं किया जा सकता | प्रधान बिना चेतना के सत्ता का सहारा लिए प्रवृत नहीं हो सकता | सांख्यों के अनुसार साध्य है चेतन बिना सत्ता का सहारा लिए प्रकृति का सुख – दुःख मोह व आत्मा ही कारण मात्र है | इसी का दूसरा प्रारूप चेतना सत्ता का सहारा लेकर सुख - दुःख और मोहात्मक पदार्थों का कारण बना | इसका द्वितीय शब्द दुःख व मोह से युक्त विपर्यय से व्याप्त होता है यदि साधन साध्याभाव से व्याप्त हो तो विरुद्ध हेतु नाम का हेत्वा भास होता है | सुख – दुःख उसी प्रकार विरुद्ध हेतु है जिस तरह वस्तु का नित्य सिद्ध करने के लिए उसका कारण क्या हो कि वह उत्पन्न होती है | उत्पन्न होने वाली कोई वस्तु अनित्य साध्या भाव ही सिद्ध हो जायेगी नित्य नहीं | सांख्यो द्वारा यह सिद्ध है कि प्रकृति चेतन की सहायता लिए बिना सुखादी से युक्त पदार्थो को उत्पन्न करती है | दिया गया साधन ठीक उल्टी वस्तु को ही सिद्ध कर देगा | यथा – सोऽयं परिणामवादः प्रामाणिक गर्हणमर्हति | न ह्याचेतनं प्रधानं चेतना नधिष्ठितं प्रवर्तते | सुवर्णादौ रुचकाद्युपादेन हेमकारादि चेतना हि एठा नोपलम्भेन नित्यत्वासाधक कृतकत्व वत्सुखदुःखमोहात्मनल्वितत्वादे --------- विरुद्धत्वात् |[1]

दि हुई मान्यता स्वरुपासिद्ध भी है सुख – दुःख और मोह आन्तरिक भाव तथा मन द्वारा ज्ञेय है | इसीलिए ये जो चन्दन आदि बाह्य पदार्थ चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य है | इसीलिए चन्दन आदि दुसरे साधनों के रूप में ज्ञेय होते हैं तथा सुख – दुःखादि उनसे अलावा ज्ञेय रूप में प्रतीत होते हैं | इसी प्रकार स्वरुप सिद्ध हेतु है | जो हेतु पक्ष में न रहे जैसे यह कहा जाता है कि शब्द एक गुण हे क्योंकि वह आँखों देखा है यहाँ चाक्षुषत्व हेतु शब्द में नहीं रहता है | इसी प्रकार सुख – दुःख और मोह में जो हेतु प्रदर्शित किया गया है, वह उनमे असिद्ध हो जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया

[1]सर्वदर्शन संग्रह शंकर दर्शन पृष्ठ 631

जा चुका है (2) "स्वरूपा सिद्धात्वाच्च | आन्तराः खल्वमी सुख- दुःख मोहा ब्राह्योम्यश्चन्दनादिभ्यो विभिन्न प्रत्यय वेदनीयेम्ने व्यतिरिक्ता अध्यक्षमीक्ष्यन्ते |"[2]

प्रधान एवं प्रकृति की सिद्धि के लिए श्रुति प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है | जैसे अग्नि को रक्तवर्ण के रूप में जाना जाता है और उसका स्वरूप तेज है और जल को श्वेत रूप में जाना जाता है अन्न का स्वरूप काला जो कि छान्दोग्य में कहा गया है | इस प्रकार जल – तेज और अन्नरुपी व्यव्हार के लाल उजला और काला ये तीन प्रकार दिये गये हैं और तीनों रूप ही यहाँ भी प्रत्यभिज्ञा से जाने जाते हैं | एक तो वैदिक प्रत्यभिज्ञा प्रबल है व दूसरी और आदि शब्दों का मुख्यार्थ ग्रहण करना सम्भव मात्र है | सांख्य में लोहित आदि शब्दों का मुख्य अर्थ ग्रहण करना रंजकत्व आदि धर्मो की समानता देखकर इनका अर्थ रजस् सत्व, तमस् तीन गुण के रूप में किया गया है | शंकराचार्य इनका खण्डन करके कहते हैं कि जब मुख्य अर्थ लेना सम्भव ही है तो फिर लक्ष्णो को क्यों ले ? इस श्रुति का अर्थ यही हुआ कि जल और अन्नरुपी प्रकृति गर्भ से उत्पन्न और अण्डज, स्वदेज व उद्भिज चारों प्रकार समूह का कारण है | कार्य को करने का सिद्धान्त की विवेचना करते हुए शंकर ने कहा कि स्वरूप को स्वभाव अथवा व्यप्ति प्रतिपादन करते हैं जबकि कार्य को एक उपाधि, अवस्था अथवा विशेष मानते हैं |"[3]

इस जगत में कोई भी अपने विशेषों सहित हैं, चैतन्य सहित व विहीन दोनों प्रकार है | सभी सामान्य अपनी श्रेणीबद्ध श्रृंखलाओं में ब्रह्म की बुद्धि के पुञ्ज स्वरूप के अन्तर्गत हैं और इसका बोध भी इसी रूप में प्राप्त होता है | यथोक्तम् –

अनेके हि विलक्षणा: चेतना चेतन रूपाः सामान्य विशेषा: तेषां पारम्पर्यगत्या एकस्मिन्, महासामान्य अन्तर्भावः प्रधान धने ----|[4]

कार्य को अपने से अभिव्यक्त होने से पूर्व कारण रूप में अवश्य रहना चाहिए क्योंकि कोई भी पदार्थ जो पहले उपस्थित नहीं होता | इस तर्क पर शंकर ने न्याय वैशेषिक केमत का खण्डन करते हुए कहा है कि कार्य ऐसी वस्तु है जो कारण में नहीं रहती | वह उत्पन्न नहीं हो सकता है और जैसे बालु को दबाकर उसमें से तेल नहीं निकालाजा सक्ता | कार्य को उत्पन्न करने के लिए कार्य एवं कारण अन्दर अन्तर्निहित होना आवश्यक है | एक प्रकार से उनको उत्पन्न करना असम्भव है | कार्य को उत्पन्न करने वाला सिर्फ इतना ही करता है कारण को कार्य के रूप में परिणत कर देता है | यदि कार्य किये जाने से पूर्व अभिव्यक्त न होता तो कर्ता कार्य को उत्पन्न करता है | यदि यह माना जाये कि कार्य को कारण का अपने से परे विस्तृत रूप में अवस्थित है जो कि उसके समवाय – सम्बन्ध से रहता है | शाब्दिक अर्थ में कहा जाये तो कार्य कोई नये रूप में उत्पन्न नहीं हुआ है | कर्ता का उद्देश्य समझाने के लिए शंकर ने कहा है कि वह कारण रूप द्रव्य को कार्य के रूप में लेन की व्यवस्थाकरती है | ऐसा समय कभी नहीं आता कि कारण अपरिवर्तित रूप में बना रहे | यदि कारण कुछ समय तक इसी प्रकार अपरिवर्तित रूप से बना रहे और तब वृहात् परिवर्तित हो तो इस आकस्मिक परिवर्तन का कोई कारण होना चाहिए जिसे हम नहीं जानते | कारण निरन्तर कार्य रूप में परिवर्तित होता रहता है | कारण कार्य भाव निरन्तर रहने वाली वस्तु है तब ही कारण

[2]सर्व दर्शन संग्रह पृष्ठ 632

[3]शंकर भाएय 2:3,9

[4]शंकर भाएय वृहदारण्यक उपनिषद् - 2:41

और कार्य दो भिन्न -2 वस्तुएं नहीं हुई और हम यह भी नहीं कह सकते कि एक दूसरे के रूप में परिणत हो जाता है | कार्य ही अपने आप में अपने अन्दर एक प्रकार का अतिशय रहता है |[5]

इसका अर्थ यह है कि कार्य की ओर बढ़ने की शक्ति जिसके द्वारा यह व्यक्त रूप में ला सकता है | यदि अतिशय से तुम्हारा तात्पर्य कार्य की उस पूर्ववर्ति अवस्था से है तो तुम अपने उस सिद्धान्त को छोड़ते हो कि कार्य कारण के अन्दर विद्यमान नहीं रहता | इससे तुम्हारा तात्पर्य यह सिद्ध होता है कि कारण की किसी ऐसी शक्ति से है जिसकी कल्पना इस तथ्य की व्याख्या के लिए की गई है व एक ही निर्णित कार्य कारण से उत्पन्न होता है तुम्हें अवश्य मानना पड़ेगा कि यह शक्ति एक विशेष कार्य का ही निर्णय कर सकती है यदि यह न तो अन्य है और न असत्य स्वरूप है | यदि यह इन दोनों में से एक होती तो यह अन्य किसी से भिन्न होती जो यातो असत है अथवा कारण व कार्य से भिन्न है | अतः अन्तः गत्वा परिणाम यह निकला कि वह शक्ति उस शक्ति के अपने ही समान है | कार्य अगर केवल मात्र में दिखाई न विद्यमान हो तो दिखाई नहीं देता |
इसी प्रकार शंकर का कहना है मिट्टी अपने से बने हुए पात्र में बराबर रहती है तथा कपड़े में धागा बराबर विद्यमान रहता है |

कारण व कार्य कि व्याख्या घोड़े व गाय की भांति भिन्न – भिन्न नहीं कर सकते | किसी भी कार्य को उसकी अवस्था के अनुरूप व्यक्त होने के पश्चात् उनका परस्पर भेद सापेक्ष है कारण व कार्य पृथक् -2 रूपों को प्रकट करते हैं और एक ही प्रकृति को प्रकट करते हैं |[6]

जब दो वस्तुओं कि अवस्था व आकृतियों में बदलाव होता है तो व्यक्त होने व विलय होने से एक ही स्वरूप की नहीं हो सकती | किन्तु शंकर का कहना है यह तर्क देना निरर्थक है | किसी भी वस्तु या कार्य व्यक्त होना बीजों से पौधों के उत्पन्न होने के समान उस पदार्थ का जो पहले से विद्यमान या केवल परिणमन मात्र है एवं तत्समान अवयवों के एकत्र हो हने से सोपाधिक है और इसी प्रकार विलय भी दिखाई देने वाली अवस्था में परिणमन का नाम है जो उन्हीं अवयवों के तिरो भाव के कारण होता है | यदि हमारा काम उनके अन्दर सच्च से असत्य और सत्य से असत्य की और संक्रमण को पहचानने का है तब भ्रूण पीछे से पैदा मनुष्य से अलग होता है एक युवा पुरुष बाल सफ़ेद हो जाने पर बदल जाया करता और एक व्यक्ति का पिता अन्य किसी व्यक्ति का पिता नहीं हो सकता था |[7]

बाहरी आवरण के कारण कोई वस्तु परिवर्तित नहीं होती | देवदत्त चाहे बाजुए फैलाएँ या मोड़े रहेगा वहीँ देवदत्त | द्रव्य अपने में बने रहते हैं जैसे दूध खट्टा हो जाने पर भी दूध तो बना ही रहता है इसी क्रिया को कार्य कहते हैं किसी कार्य का कारण से भिन्न स्वरूप में विचार नहीं कर सकते चाहे सौ वर्ष तक प्रयास कर ले | स्थिति या परिस्थितियों के अनुरूप अन्तिम कार्य तक किसी न किसी कार्य के रूप में प्रकट होता है जो की दिखाई देने से पूर्व उपस्थित रहता है और कारण रूप ही होता है |[8]

[5]शंकर भाएय 2:1,160

[6]शंकर भाएय 2:1,17

[7]शंकर भाष्य 2:1:27

[8]ट्युसन्स सिस्टम ऑफ़ दि वेदान्त पृष्ठ 256-259

शंकर अपने मतानुसार वस्त्र के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं और तर्क करते है कि जब तक वस्त्र एक थान के रूप में लिपटा हुआ रहता है और यह हम बताने में असमर्थ रहते हैं कि यह कपड़ा ही है या कोई अन्य वस्तु है और यदि ज्ञात भी हो जाये तो उसकी लम्बाई व चौड़ाई के विषय में जानना मुमकिन नहीं है | जिस प्रकार कपड़ा समेटा हुआ या खुल्ला वह कपड़ा हि रहेगा इसी प्रकार कारण व कार्य समानान्तर ही है |[9]

कोई भी द्रव्य अपने पृथक स्वरूप में प्रकट होने से अपने रूप को नहीं छोड़ता है | परस्पर असम्बद्ध किसी वस्तु विषयों के न केवल एक – दुसरे के पश्चात् क्रम में आने से ही, जिनमें वह केवल मात्र आकर का परिवर्तन है | दही व मट्ठे के रूप में दूध की निरन्तर उपस्थिति तथा वृक्ष में बीज की स्थिति रूप निरन्तरता माननी पड़ती है चाहे व प्रत्यक्ष रूप में दिखाई दे या नहीं दे जैसे कि दूध व दही जैसे कि बीज व वृक्ष दृष्टान्त में | यह भी कहना उचित है कि कारण ही एकमात्र यथार्थता है और कार्य सिर्फ प्रतीति मात्र है |[10]

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूची</u>–

(1) ब्रह्म सूत्र (शंकर भाष्य गीताप्रेस, गोरखपुर
(2) सर्व दर्शन संग्रह
(3) भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास – जयदेव वेदालंकार न्यु भारतीय बुक कॉरपोरेशन दिल्ली 2017

[9]शंकर भाष्य पृष्ठ 2:1, 21

[10]शंकर भाष्य 2:2,21